[Shri A. C. George]

with these words I thank all the honourable Members for their constructive criticisms.

THE VICE-CHAIRMAN (SHRI V. B. RAJU) : The question is :

"That the Bill further to amend the Essential Commodities Act, 1955, be taken into consideration."

The motion was adopted.

THE VICE-CHAIRMAN (SHRI V. B. RAJU) : We shall now take up clause-by-clause consideration of the Bill.

Clauses 2 to 9 were added to the Bill. Clause 1, the Enacting Formula and the Title were added to the Bill.

SHRI A. C. GEORGE : Sir, I move : "That the Bill be passed."

The question was put and the motion was adopted.

GOVERNMENT MOTION RE ANNUAL REPORT OF THE UNIVERSITY GRANTS COMMISSION FOR 1973-74

शिक्षा और समाज-कल्याण तथा संस्कृति विभाग में उपमंत्री (श्री डी० पी० यादव) : उपसभाध्यक्ष जी, 1973-74 के वर्ष के लिये विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के वार्षिक प्रतिवेदन पर, जो 19 मई, 1976 को राज्य सभा के पटल पर रखा गया था, विचार किया जाये।

उपसभाध्यक्ष जी, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की 1973-74 की रिपोर्ट प्रस्तुत कर रहा हूं और इसे प्रस्तुत करते समय सदन के सामने कुछ अर्ज भी करना चाहता हूं। आलोच्य वर्ष 1973-74 में जो काम विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने किया है, उसकी रिपोर्ट माननीय सदस्यो के हाथ में है और हम चाहेंगे कि उस रिपोर्ट पर और उसके बाद जो कुछ भी यूनिवर्सिटी ग्रान्ट्स कमीशन ने कार्य किया है, उस पर उनके सुझाव हों, जिससे हम और मजबूत इरादे के साथ विश्वविद्यालय अनुदान आयोग को अपने पैरों पर खड़ा कर सकें।

जहां तक शिक्षा का सवाल है, शिक्षा में आमूल परिवर्तन हो, शिक्षा को नया रूप दिया जाय, इस प्रकार की बहुत सारी मांगें और कभी-कभी इस तरह के नारों की रिपोर्ट भी आती रही है। लेकिन पिछले दशक में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के माध्यम से शिक्षा में परिवर्तन लाने के लिये जो कुछ भी उपाय किये गये है, उनके लिये सरकार यह तो नही कह सकती कि सभी कार्य ठोस हुए हैं, लेकिन बहुत हद तक हमने उसमें एकरूपता लाने की कोशिश की है, उसे एक ठोस आधार पर बढ़ाने की कोशिश की है।

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने पिछले 5-6 सालों में जो कुछ भी किया है वह किसी से छिपा हुआ नही है। जहां तक मेरे अनुभव का संबंध है, पि[illegible] सालों मे विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के कार्यों को देखने का मौका हम लोगों को मिला। मैं इतना ही कह सकता हूं कि सीमित साधनों के अन्दर जो कुछ भी किया जा रहा है और किया गया है वह सराहनीय है। पिछले तीन-चार सालों में जो तनाव हमारी अर्थ-व्यवस्था पर रहा, उसके कारण हम चाहकर भी और बहुत जगह प्लान में पैसा प्रोवाइड करने के बाद भी उनको पैसा नही दे सके। लेकिन उनके जो भी कार्य हुए है, उन्हें बहुत नियमित रूप से करने की कोशिश की गयी है।

उपसभाध्यक्ष जी, शिक्षा के विस्तार के कारण जो अनियोजित शिक्षा हमारे देश में थी, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने यह कोशिश की है कि शिक्षा अनियोजित न हो बल्कि उपयोगी हो, जरूरत की हो, आवश्यकता की हो। इसी प्रकार विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने हमेशा यह कोशिश की है कि सारे देश में एक तरह की शिक्षा हो, यूनिफार्मिटी हो और इसी उद्देश्य से 10 + 2 + 3 जिस प्रणाली या पद्धति को हम लोगों ने अपनाया है, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने भी उसको अपनाया है, उसकी सराहना की है। उसमें किस तरह की क्वालिटी हम लायेंगे

और किस तरह से छात्र-छात्राओं को हम विश्वविद्यालय में लाकर नये सांचे में ढालेंगे, उस को विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने माना है और उस पर नए रूप से हम कार्य कर रहे हैं। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने सरकार के साथ इस बात को माना है कि शिक्षा अनियोजित नही होनी चाहिए और यूजलेस भी नहीं होनी चाहिए; शिक्षा हमारी ऐसी होनी चाहिये जिसका कि यूज हो सके, जिसकी उपयोगिता हो सके। अतः उपयोगी शिक्षा और नियोजित शिक्षा जो हमारे जीवन में हर समय हमारा साथ दे सके वैसी शिक्षा के लिए विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने कोशिश की है। हमारे सामने बड़े-बड़े विद्वान—दत्त साहब, रशीदुद्दीन साहब और डा० सिंह साहब बैठे हुए हैं। हम उनको ज्यादा सुनना चाहेंगे कि उनके क्या विचार हैं, इसलिए कि वे मैदान मे है और हम तो जो है वह एक छोटे से कमरे में बैठे है। तो मैदान में उनको जो अनुभव हुआ है उसके आधार पर, हमारा कार्य किस प्रकार का हो, इस संबंध मे उनसे आलोचना हम सुनना चाहेंगे।

उपसभाध्यक्ष जी, कमीशन का ध्यान शैक्षिक सुधार के विभिन्न पहलुओं पर विशेष रूप से रहा है। पहले की भांति इमारत, लेबोरेटरी, साज सामान आदि की परियाप्तता पर ध्यान रहा। विशेष जोर पाठ्यक्रम पर दिया गया है। आलोच्य वर्ष में विशेष पैनल बनाए गए ताकि विषय-वार पाठ्यक्रमों का पुनर्निर्माण किया जा सके। विज्ञान, सामाजिक विज्ञान तथा अन्य विषयों में पाठ्यक्रम के आधुनिकीकरण पर ध्यान आकर्षित किया है। केवल पाठ्यक्रमो के बारे में ही नहीं बल्कि इस आलोच्य वर्ष मे कमीशन ने परीक्षा प्रणाली पर विशेष ध्यान दिया। इसके अतिरिक्त विचाराधीन वर्ष 1973-74 मे विद्यार्थियों को दी जाने वाली सुविधाओं पर कमीशन ध्यान देता रहा है। उन सुविधाओं में विशेष रूप से उल्लेखनीय है होस्टलों का निर्माण, स्कालरशिप तथा फैलोशिप, स्वास्थ्य केन्द्र, खेल तथा शारीरिक शिक्षा की सुविधाएं तथा रोजगार संबंधी शिक्षा केन्द्र स्थापित किया जाना, इन सब कार्यक्रमों में आयोग का विशेष ध्यान रहा है। उच्च शिक्षा देश के सामाजिक तथा आर्थिक विकास का साधन बने तथा आर्थिक और सामाजिक दृष्टि से पिछड़े हुए वर्ग के उत्थान का माध्यम सिद्ध हो सके, हमारा उद्देश्य यही रहा है। अभी प्रधान मंत्री जी ने जो 20-सूत्री आर्थिक कार्यक्रम घोषित किया है उसके तदनुरूप हमने बहुत सारी होस्टलों की सुविधाएं बढ़ाई हैं, बुक बैंक हमने खोले हैं। इन सब बातों के बारे में हम आलोच्य वर्ष की रिपोर्ट पर विचार करेंगे।

इन चंद शब्दों के साथ मै इस रिपोर्ट को सदन के सामने पेश करता हू और माननीय सदस्यो के सुझाव चाहता हूं।

The question was proposed.

DR. V. P. DUTT (*Nominated*): Mr. Vice-Chairman, Sir, it is unfortunate that the Minister of Education is not here. It is not that we are unhappy with the distinguished friend Shri Yadavji, but all the same I think it was in the fitness of things that the honourable Minister himself should have been here. I do not know. Probably there are reasons or circumstances why he has not been able to come here, but I think we were entitled to be told....

THE VICE-CHAIRMAN (SHRI V. B. RAJU): He is in a meeting. He is held up there.

DR. V. P. DUTT: Sir, that is not a sufficient explanation, that he is in a meeting.

THE VICE-CHAIRMAN (SHRI V. B. RAJU): But you may be sure that the Deputy Minister will convey your views to the honourable Minister.

DR. V. P. DUTT: I understand that. Even if he does not do that, I know that the proceedings are being recorded and he will read the same. All the same, I do feel that the honourable Minister should have been here because it is a pleasure to hear him and to speak to him. Also, because I think, although the Report is for 1973-74, many ideas about education, higher education and the educational system would be discussed and, we would have been happier if the honourable Minister had been here.

[Dr. V. P. Dutt]

Sir, I should like to say that there is one difficulty in discussing this report. This Report is for 1973-74, which is past history. It is outdated, it is almost irrelevant now because a lot of new things have happened, a lot of changes have taken place, even in the University Grants Commission. Therefore, it is somewhat past history which we are discussing. In fact, I was going to say—it would have been a pleasure to discuss with Prof. Nurul Hasan whether this should be considered as a paper in medieval Indian history or modern Indian history. He may be interested in medieval Indian history, but I am interested in modern Indian history. All the same, I would like to say that we can not only discuss the trends visible in the Annual Report of 1973-74 but also touch upon some of the important problems that are facing the University Grants Commission and the country. Certainly, the Chairman, the Secretary and the other officers and members of the University Grants Commission have been doing some very commendable work. They have been putting in a lot of effort and an earnestness of purpose in raising the standards, in trying to promote quality education, in setting up panels for higher education, in establishing many workshops and in trying to take the country forward in higher education. There are some distinguished people in the University Grants Commission; we are happy that they are there and that they are associated with this work.

There is another problem with this report and that is that one does not find the philosophy or guideline or goals or objective behind the UGC's Report. The Report no doubt mentions some perspective towards the end in Section VIII. But it is neither sufficient nor comprehensive. It only talks of limiting the admissions and consolidating. It does not provide us with any glimpse into the vision before the University Grants Commission for the development of a coherent and meaningful higher educational system, That, I believe, is lacking in the Report, and I hope that in future this point would be taken into consideration.

These are all national problems, and we all have to pit our heads together to find solutions to apparently intractable problems. The problems are vast and stupendous. So, we should also be steadfast in our determination. Undeniably, higher education has been in a state of crisis for many years now—political crisis, social crisis, economic crisis, crisis of relevance and crisis of identity. We have remarked earlier at many places and on many times how topsyturvy our priorities have been, how lopsided our development in the educational field has been. I will mention one or two aspects of it. The expansion in primary education has been less than that in secondary education; the expansion in secondary education has been less than that in higher Secondary education; the expansion in higher secondary education has been less than that in higher education, And even within higher education, expansion in undergraduate education now is less than that in post-graduate education.

4 P.M.

In other words, it is totally the reverse of what it ought to be in any sensible educational system for a developing country. In the last 25 years, primary education expanded three times, middle education four times, higher secondary education five times and higher education, college and university education, more than six times. So, Sir, you can see how unfortunate this process is, what seems to be and what apparently is an irreversible process, for a country whose priority attention should have been on the promotion of primary education on the removal of illiteracy and on spreading basic knowledge, information, light, to the country, and especially to the countryside. And that is why I say that we should not be surprised to find in the Report that even in higher education, undergraduate education has proportionately declined and postgraduate education has proportionately risen. In fact, as the University Grants Commission Report states, during 1973-74 postgraduate and research enrolment increased by about nine per cent as compared to an increase of 3·7 per cent for total university level enrolment. Sir, of a piece with this kind of lopsided development is the fact apparent from a reading of the Report of the University Grants Commission that the growth in professional education is very much less than the growth in science and the growth in science

education is less than the growth in the arts and humanities. The total enrolment from 1971 to 1974 reveals that the enrolment in the faculty of arts and humanities went up from 45·2 per cent to 46·27 per cent the faculty of science enrolment decreased from 30·3 per cent to 27·5 per cent, and professional education accounted for not more than 9·6 per cent of the total enrolment in 1973-74 and actually declined in the faculties of engineering, technology and agriculture. Even in agricultural science and in agricultural institutions, there is a decline in enrolment. One would have imagined that in a developing country like India, expansion would be faster in professional education, in science, in engineering, in technology and particularly in agricultural institutions. But the picture is rather dismal. And it is equally unfortunate that we see that the relative amounts spent by the University Grants Commission on science, engineering and technology decreased. The development grant paid to the universities for technology and engineering dropped from Rs. 199·54 lakhs in 1972-73 to Rs. 194·98 lakhs in 1973-74. Similarly, the grant for science dropped sharply from Rs. 674·82 lakhs to Rs. 473·97 lakhs. Sir, I do not think we should put all the blame on the University Grants Commission and no doubt this may have been partly due to the sharp reduction in the funds available with the University Grants Commission and perhaps also to the movement away from science and technology and professional education in our higher educational institutions. But all the same, Sir, this trend is dangerous. This dangerous trend must be reversed. I hope that the University Grants Commission will give all its attention to stopping this trend and to promoting the trend towards science, technology, agriculture, engineering and other professional education. If we look at the vast educational scene in the Universities, there are a very large number of affiliated colleges or even colleges which may not be affiliated, but most of the education really is being given in higher education in these colleges. So far as post-graduate colleges are concerned, in science subjects, in 1973-74 the University Grants Commission was helping only 12 colleges as against 21 in the previous year and 23 Departments only as against 41 in the previous year, as the total UGC allocation was only Rs. 3,62,472 as against Rs. 20,81,000 in 1972-73. I know there are difficulties before the UGC also. But I hope that a serious examination will be made and that this unfortunate and disastrous trend of moving away from science, agriculture and technology will be stopped and that we will make every effort to redirect our education towards agricultural sciences and institutions towards technology and towards sciences.

We all agree that education must be an instrument of social change and that education must help people in the democratic processes in this country. We have to introspect whether we are really doing that and how much we are doing and what is the pace of progress in using education as an instrument of social change. Our esteemed friend, the Education Minister, for whom I have great regard, feels distressed if we say that our educational system is still the one that Lord Macaulay left to us, by and large. But I do not want to hurt his sensibility on that. But I would like to say that all the facts that I am giving do point to a situation not of modern education, but still of traditional education which was relevant in the nineteenth century, but no longer relevant in the fifties, sixties and seventies of this world. It is a problem for all of us to consider that the steps that the Education Ministry has taken, the steps that the UGC has taken and the steps we have taken outside are totally insufficient so far for making education an instrument of social change and deepening the democratic processes.

The Academicians' Convention which met recently and over which I had the privilege of presiding and which was attended by 45 Vice-Chancellors and nearly 200 academicians—it was also attended by my able colleagues, Dr. V. B. Singh and Prof. Rasheeduddin Khan had said in a very major resolution that educational authorities should use this opportunity, which is a God-sent opportunity, because our education was on the brink of disaster and collapse, and certainly the emergency came to the help of educational authorities to save them from total disintegration and rupture, to restructure the contents and methods of education at various levels with a view to eliminating communal, caste and obscurantist ideas and fostering a sense of belong-

[Dr. V. P. Dutt]

ing to the country as a whole. We have not done enough in this direction. We must look into what is being taught in our higher education, not only in text books, but all the reference books and readings.

And, Sir, we must weed out all that is reactionary and all that is obscurantist. I believe that we should adopt two criteria for this purpose. One criterion is that we must finally and irrevocably shed our colonial legacy, the colonial mentality and the colonial education. Sir, Bertrand Russel once said—he said it in a powerful statement—that there is an imperialism of culture which is harder to overcome than the imperialism of power. Now, it is this imperialism of culture which we must not only overcome, but we must also overthrow. Therefore, I will urge upon the University Grants Commission and I will urge upon the Ministry of Education that they must pay immediate attention and earnest attention to seeing into this aspect so that we are able to discard this imperialism of culture which is still dominating our higher education.

Then, Sir, the second criterion that we must adopt is the relevance of it. What is the relevance of what is being taught in our higher educational institutions to our problems? That is the criterion that we should adopt. The Academicians' Convention strongly felt and recommended that education in our country should be linked to its environmental needs and requirements and be thus related to the society and its problems. The development of a scientific temper, the promotion of science and technology and agriculture, these two should be matters of prime concern and consideration. Let our higher education also have an intimate and immediate relationship with our needs and requirements, with our natural and human resources, with our problems and so on. We have our own flora and fauna; we have our own natural resources; we have our own human resources; and we have our own lakes and ponds and wells and so on and so forth. Why can't our research and other activities be geared towards the extraction of wealth from the natural resources that we have from the human resources that we have? Why should we look to foreign models? Why should our higher education be like this which is only suited to foreign environments, foreign framework and foreig needs and requirements? Why can't we think of our own needs and requirements and why can't our activities be directed towards exploiting our natural resources, our human resources, which we possess? I am sure that all the honourable Members here will agree with me when I say that we have certain resources of our own which other countries do not have and they have certain resources which we do not have. What is the use of going in for something which they possess and which we do not want thereby making a mockery of our educational system? (*Time bell rings*).... Sir, I still have some more minutes. Since I am the first speaker, I would claim the privilege of having a few more minutes and the privilege of speaking a little bit at length.

Sir, I would like to draw the attention of the honourable Eucation Minister, the honourable Deputy Minister of Education, my good friends, and also the University Grants Commission to the tremendous wastage that is going on in our higher education. I am sure that he knows much more than I do, that there is enormous wastage in our higher education. I have given figures before at many forums and I do not want to clutter up my speech with figures. But I would like to mention one or two figures in this connection. Firstly, I will take up the case of elementary education. Out of every hundred children who go to Class I, only about fifty reach Class V while only twenty-five reach Class VIII. Secondly, in the case of secondary education, out of every hundred children in Class IX, only about seventy reach Class XI. Thirdly, in the case of higher education, the picture is really stark because the wastage is nearly 55 to 60 per cent. Out of every hundred students, hardly about forty, a maximum of 45, graduate. The figures I have for 1972-73, which are old figures and which do not give the recent picture, show that the total enrolment at the college level was 15·72 lakhs; as against this only 4·2 lakhs graduated. The others failed or dropped out, so on and so forth. Even in engineering, medicine and agriculture, the wastage is about 30 per cent. And this poor country really cannot afford this kind of enormous wastage in our country. Then, in our higher education we

spend nearly Rs. 1000 per student, and, I think, probably about Rs. 16,000 or even more for every medical student or engineering student. And yet the majority of our higher education is a wastage of one kind or another.

Now, Sir, this is the problem which all of us have to consider. It is not just a question of the University Grants Commission or the Ministry of Education. But all of us have to consider this problem. The University Grants Commission, as I have said, is to be commended for its efforts to raise the standards and promote quality. But there is one aspect which I want to submit to them to reconsider, and which really bothers me very much. And that is their new direction that every lecturer must have a Ph.D. degree.

Sir, this scheme is both ill-conceived and ill-advised. We were previously producing graduates *en masse*. Now we are trying for Ph.Ds *en masse*. I am told that if this scheme were to be put into practice really, we will need 6000 Ph.Ds a year. We will be producing 6000 Ph.Ds a year, because if I am not mistaken, from the figures they have given, it will be seen that there are about 17,675 lecturers in University departments; there are also about 1,29,000 staff in affiliated colleges, out of which 1,00,177 are lecturers. Now if all of them are going to be asked to do Ph.D., then, obviously, we shall have the distinction of being the only country in the world producing such a large number of Ph.Ds.

Sir, already, Ph.D. in this country—I submit this with all earnestness and it is an unfortunate fact—has become a scandal; it is a scandal and a shame. And now, if we are going to open the flood-gates for mediocrity under the high-sounding banner of Ph.D., what will happen to our education? I am not objecting to the stress on research. By all means, have it. But I am objecting to the insistance on Ph.D.

I am reminded of a joke, Sir. In post-War Germany, the first shop that was opened was for Ph.D. degree of Berlin University. And somebody went there and said, "Are you selling Ph.D. degrees?" The Shopkeeper said, "Yes, if you pay 500 Marks you will get a Ph.D. Degree." He said, "I want a Ph.D. degree". He gave 500 Marks and he got a Ph.D. degree, duly signed and attested and all that. He went away. But soon he thought of something and he came back, and he said, "I want another Ph.D. degree". The shopkeeper said, "What for?" He said, "For my horse now." The shopkeeper said, "No, Sorry, this is for donkeys only" ....*(Interruptions)*. I hope we are not going to reduce our Ph.D. to that level. I am sorry, I am speaking so strongly. But this seems to be an idea borrowed from abroad.

DR. M.R. VYAS (Maharashtra): I think 500 cigarettes would be the proper.... *(Interruptions)*.

DR. V.P. DUTT: I am grateful for this addition. I would submit with all humility, with all earnestness, that you are reconsider the situation so that a more viable and a more practical decision can be taken. If you are going to ask every Lecturer to do Ph.D., what is the point in having interviews and selections for Ph. D.? Then you must allow every Lecturer, everybody to do Ph.D. *(Time bell rings)*.

Then, Sir, what are we doing about 10+2+3? First of all, what are we doing about 10+2? I would like the hon. Deputy Minister to lend me his ears for a few minutes. You are allocating 10 crores of rupees for +2 for five years. It is a joke. My dear friend, it is a joke. Rs. 10 crores for vocationalisation of Higher Secondary Education for five years. There is no infrastructure being developed in the schools for this. I am told you are going to have commerce-based vocationalisation in Higher Secondary Schools. If that is going to happen, then I am afraid that a very good idea and a very good experiment will come to grief. But what are we doing about +3? What directions have been given to the universities for restructuring their courses in order to provide for a meaningful +3? I have not been able to check it up. The report that I read in the newspapers says that the universities understand that they have to do nothing about +3. I am sure that the report was not correct because if you are going to have +2, then you must have complete restructuring of University Courses.

Sir, we have been talking about norms. Certainly, you want to have norms for teachers. You want them to be earnest and

[Dr. V. P. Dutt]

hard-working. But, are there going to be any norms for the educational authorities also or not? Is it not incumbent on a Vice-Chancellor also to give his undivided attention to the work of raising quality and restructuring education ? Sir, I do not want to take any names, either of universities or of individuals. But I am told that there is a Vice-Chancellor in a university who is present only for one week during the month. He is away for the remaining three weeks. The Selection Committees cannot meet for almost the whole year because the Vice-Chancellor has no time to give dates for the Selection Committees. Certainly, there should be some norms for these matters also. I would be grateful if Mr. Yadav could contradict me if he thinks that I am wrong. I have been told about one Vice-Chancellor. It may be true of other Vice-Chancellors also. I have been told about one Vice-Chancellor that he is not available to the students or the staff. The Selection Committees cannot meet. The general average of his presence in the university is one week during the month.

We should have done more for the weaker sections. Mr. Yadav spoke about the weaker sections of the society. This report of course, is a past report. I hope that we will give immediate attention to this because it is not a problem of only having reservations for the weaker sections. It is also a problem of giving our immediate attention to their elevation up to a certain standard so that they can be brought up to the level that the advanced sections have achieved. (*Time bell rings*) Nothing has been done for that.

At the end, I will say that education is going to become a concurrent subject. In fact, I am very happy. I would like to take this opportunity to congratulate the Prime Minister and other leaders that a long-standing demand of the academicians that education should become a Concurrent Subject has been accepted. I hope that legislation in this regard will be coming forth. But if education is to become a Concurrent Subject, then I would say that the University Grants Commission's responsibility will also increase because then they will have not only to provide guidance to some of the Central universities but they will have to lay down the norms and guidelines for various universities and educational institutions. Therefore, I would submit that what is required really is not that the University Grants Commission should look into each and every detail whether a college should have a *chaprasi* or not, whether there should be a lecturer here or a reader there or a professor there but they should give leadership, they should provide guidance, they should give directives within the well-defined frame-work and well-defined goals for the university system of education, for our system of higher education. I am afraid, unless we do that, our education will continue to dither on the brink of disaster as it has been doing. And the moment you remove the safety valve that has been provided fortuitously recently you will get swamped by all the reactionary and obscurantist forces who want to dominate the polity of this country. Therefore, I hope this opportunity will be utilised for considering some of the points that I have raised. Thank you, Sir.

श्री प्रकाशवीर शास्त्री (उत्तर प्रदेश) : उपसभाध्यक्ष जी, मैं अपनी बात को प्रारम्भ करना चाहता हूं कि विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के नाम से । यह जो इस संघठन का नाम यूनिवर्सिटी ग्रान्ट्स कमीशन है, मैं यह चाहता हूं पहले इसमें कुछ सुधार होना चाहिए। इतना बड़ा विश्वविद्यालय अनुदान आयोग जो देश में इतने बड़े विश्वविद्यालयों की शिक्षा के स्तर में सुधार लाने के लिए बना है उसको ग्राण्ट्स कमीशन कहा जाए यह ठीक है। ग्राण्ट लेने का काम तो शिक्षा मत्रालय में 2 डिपुटी सेक्रेटरी और बढ़ा दिए जाएं, वे भी कर सकते हैं। यूनिवर्सिटी ग्राण्ट्स कमीशन का काम केवल ग्राण्ट देना नहीं है। यूनिवर्सिटी ग्राण्ट्स कमीशन का काम है—शिक्षा के स्तर में कैसे सुधार किया जा सकता है, शिक्षा को किस तरह नए परिवेष में देश के लिए उपयोगी बनाया जा सकता है और हम अपने शिक्षणालयों को, राष्ट्रीय एकता की जो नयी लहर हमारे देश में आई है, उसके साथ कैसे ढाल सकते हैं ? यह विश्वविद्यालय अनुदान आयोग का मुख्य काम है। केवल पैसा बांटने का काम विश्वविद्यालय अनुदान

आयोग का नहीं है । लेकिन इस नाम से एक झलक ऐसी आती है कि इस आयोग का काम केवल पैसा बांटने का है। मैं नहीं समझता कि हमारे देश के शिक्षा शास्त्रियों ने, शिक्षा मंत्रालय ने या इस अनुदान आयोग के अधिकारियों ने कभी इस बात का विचार किया है कि नही कि यह नाम यूनिवर्सिटी ग्राण्ट्स कमीशन— आज के परिवेश में कहां तक उचित है ?

दूसरी बात जो मैं विशेष रूप से कहना चाहता हूं वह यह है कि अभी कुछ दिन पहले वर्तमान प्रधान मंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी की अध्यक्षता में श्रीनगर मे राष्ट्रीय एकता सम्मेलन हुआ था, उस राष्ट्रीय एकता सम्मेलन में जहां और बहुत से निर्णय हुए, एक निर्णय यह भी हुआ था कि हमारे देश के विश्व-विद्यालयों में, और विशेष रूप से विश्व-विद्यालय से संबंधित मेडिक्ल कालेज, इंजीनियरिंग कालेज और ऐसे टेक्निकल विषयों के जो कालेज हैं उनमें प्रवेश लेने के लिए जो विद्यार्थियों को डोमिसाइल सार्टिफिकेट देना पड़ता है यह बात इस देश की एकता की दृष्टि से उचित नही है। आज अगर किसी विद्यार्थी को उत्तर प्रदेश के किसी विश्वविद्यालय में या इंजीनियरिंग कालेज में प्रवेश लेना है तो अपने प्रवेश पत्र के साथ उसको यह भी सिद्ध करना कि वह उत्तर प्रदेश का निवासी है । आन्ध्र प्रदेश का जो विद्यार्थी है उसको यह सिद्ध करना कि वह आन्ध्र प्रदेश का निवासी है। जब एक ओर हम राष्ट्रीय एकता की इतनी बड़ी दुहाई देते हैं और राष्ट्रीय एकता की चर्चा करते हैं तो यह क्यो आवश्यक नहीं है कि बंगाल का विद्यार्थी तामिलनाडु में भी प्रवेश ले सकता है और तामिलनाडु का विद्यार्थी यहां प्रवेश ले सकता है। सारा देश एक है तो क्यों अपनी शिक्षा में हम संकुचित रेखाएं खीचते चले जा रहे हैं कि हम विद्यार्थियों से अपने प्रांत का प्रमाण-पत्र मांगें, तब उस विश्वविद्यालय से संबंधित कालेज में उसको प्रवेश दें। राष्ट्रीय एकता परिषद् में इस बात के ऊपर बड़ी गंभीरता से विचार किया गया और यह निर्णय लिया गया कि इस पद्धति को समाप्त करना चाहिए। लेकिन मुझे दुख है कि अभी तक विश्वविद्यालय अनुदान आयोग इस दिशा में एक कदम आगे नही ढ़ब सका। विश्व-विद्यालयों से सम्बन्धित जितने इंजीनियरिंग कालेज और मैडिकल कालेज हैं आज भी वहां यह पद्धति है कि उनमें प्रवेश के लिए विद्यार्थी को उस प्रान्त का निवासी होने का प्रमाण-पत्र अवश्य देना पड़ेगा। मैं चाहता हूं कि बदलते परिवश में राष्ट्रीय एकता परिषद् के इस निर्णय को अवश्य कार्यान्वित किया जाना चाहिए। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की इस रिपोर्ट पर विचार करते समय शिक्षा मंत्रालय और शिक्षा मंत्री जी इस बात के ऊपर निश्चित रूप से कोई न कोई अधिकृत जानकारी दें।

तीसरी बात मै कहना चाहता हू दक्षिण भारत के विश्वविद्यालयों के बारे में। उप-सभापति जी, मैं आपके प्रान्त से ही प्रारम्भ करना चाहता हू। मुझे अच्छी तरह याद है, मैसूर के पहले मुख्य मंत्री और रेल मंत्री श्री हनुमन्तैया जी से मेरी बातचीत हो रही थी। मैं कह रहा था कि जब संविधान ने यह निर्णय कर दिया कि इस देश में अंग्रेजी के स्थान पर हिन्दी आयेगी तो क्या बात है कि देश का बहुत बड़ा हिस्सा आज भी हिन्दी से अछूता है। उस समय उन्होंने एक बात कही जिसको मैं आपके माध्यम से शिक्षा मंत्री महोदय को सुनाना चाहता हूं। वे कहने लगे कि अगर मेरे हाथ में काम दिया जाय तो मैं पांच वर्ष में सारे देश को हिन्दीमय बना सकता हूं। मैने हनुमन्तैया जी से कहा कि उस जादू की छड़ी को आप हमें भी बताइये ताकि हम उसे लोगों के सामने रख सकें। उन्होंने कहा कि कोई जादू की छड़ी नहीं है, सीधी सी एक बात है। दक्षिण भारत में जितने अहिन्दी भाषी राज्य है उनमें से हरएक में हिन्दी माध्यम का एक विश्वविद्यालय स्थापित कर दिया जाय, प्रत्येक डिस्ट्रिक्ट में एक हिन्दी महाविद्यालय, कालेज बनाया जाय और जो विद्यार्थी वहां से ग्रेजुएट होकर निकलें उनको निकलने के साथ सरकारी नौकरी प्राप्त हो

[श्री प्रकाशवीर शास्त्री]

सके। इस तरह की सुविधाएं दी जायं तो फिर देखिए उत्तर भारत से अधिक दक्षिण भारत के लोग हिन्दी की परीक्षाएं पास करने लगेंगे । उनकी बात में मुझे वजन दिखाई दिया और मैने सोचा कि इस अवसर का लाभ उठा कर यह बात मैं अपने सहयोगियों के कानों तक पहुंचा दूं।

मैं समझता हूं कि देश में राजनीतिक दबावों में आकर विश्वविद्यालयों की स्थापना नहीं होनी चाहिए । दूसरे प्रदेशों को छोड़ दीजिए, मै अपने उत्तर प्रदेश की बात करता हूं । पश्चिमी उत्तर प्रदेश में, एक-आध जिले को छोड़ कर, लगभग हर जिले में विश्वविद्यालय है – बरेली मे विश्वविद्यालय है, नैनीताल में विश्वविद्यालय है, गढ़वाल मे विश्वविद्यालय है, अलीगढ़ में विश्वविद्यलय है, आगरा में विश्वविद्यालय है, मेरठ में विश्वविद्यालय है। बताइये विश्वविद्यालयों के साथ यह क्या उपहास चल रहा है। मै राजनीतिक दबावों में आकर विश्वविद्यालय खोलने के पक्ष में नही हूं । कही कोई आन्दोलन हुआ, झट विश्वविद्यालय की स्थापना हो जायगी। इससे विश्वविद्यालय की शिक्षा के स्तर में गिरावट आती है और जो विश्वविद्यालय के साथ गरिमा रहती है उच्च शिक्षा की वह भी गिरती है।

मै इस बात का पक्षपाती अवश्य हूं कि अगर हमको सारे देश को एकता के सूत्र में बांधना है जल्दी से जल्दी जैसी कि संविधान की भावना है और सरकार की नीति भी है कि सारे देश में एक ऐसी भाषा अवश्य हो जिसके माध्यम से वार्तालाप हो सके, सरकारी कामकाज हो सके तो आपको दक्षिण भारत के प्रत्येक राज्य में एक हिन्दी माध्यम का विश्वविद्यालय अवश्य स्थापित करना चाहिए। जवाहरलाल जी जब प्रधान मत्री थे उस समय उनकी अध्यक्षता में जो समिति बनी थी उसका मै भी सदस्य था। उसमें यह निर्णय किया गया था दक्षिण में कहीं हिन्दी माध्यम का विश्वविद्यालय स्थापित किया जाय। आपको स्मरण होगा कि जब हैदराबाद राज्य का विलय हुआ तब उस्मानिया विश्वविद्यालय के सम्बन्ध में यह चर्चा चली थी लेकिन क्योंकि एक ही विश्वविद्यालय था इसलिए वह बात छोड़ दी गई। जब दूसरा वहां विश्वविद्यालय बना तब हमने यह बात रखी कि जवाहरलाल जी की जो इच्छा थी उसको पूरा किया जाय और इसको हिन्दी माध्यम का विश्वविद्यालय बना दिया जाय। मुझे पता लगा है कि हैदराबाद में जो दूसरा केन्द्रीय विश्वविद्यालय बना है उसमें अभी तक हिन्दी विभाग तक स्थापित नही हुआ है, हिन्दी माध्यम का तो प्रश्न ही छोड़ दीजिए । उस समय जब यह निश्चय हुआ था कि दक्षिण भारत में विश्वविद्यालय खोला जाय तो पूछा गया कि कौन राज्य अपने यहा हिन्दी माध्यम का विश्वविद्यालय स्थापित करना चाहता है। सबसे पहला जो प्रस्ताव आया वह कर्नाटक की ओर से आया। जब यह पूछा गया कि वे उसे कहां स्थापित करेंगे और क्या सुविधा दे सकते है, तो कर्नाटक के मुख्य मंत्री ने कहा कि हम गुलबर्गा में हिन्दी-माध्यम का विश्वविद्यालय स्थापित करना चाहते है। केन्द्रीय हिन्दी समिति की बैठक मे नेहरू जी की अध्यक्षता में यह निर्णय हो गया, एक उपसमिति भी बन गयी, लेकिन पता नही वह फाइल कहां दबी पड़ी है। अगर हम सचमुच देश को जल्दी से जल्दी एकता के सूत्र में भाषा के माध्यम से बांधना चाहते है तो इस को आपको प्राथमिकता देनी चाहिए और प्राथमिकता दे कर दक्षिण भारत की नयी पीढ़ी जो उभर कर आ रही है उसको उत्तर भारत के साथ तादात्म्य स्थापित करने में सहायता देनी चाहिए जिससे एकता सुदृढ़ हो सके। इसके लिए आवश्यक है कि दक्षिण भारत के प्रत्येक राज्य में कम से कम एक हिन्दी-माध्यम के विश्वविद्यालय की अवश्य स्थापना की जाय।। मैं चाहता हूं कि शिक्षा मंत्रालय इस बात पर गम्भीरता से एक बार सोचे।

एक बात मै कहना चाहता हूं पांच-छः जो

केन्द्रीय विश्वविद्यालय है उनके बारे में । मैंने यूनिवर्सिटी ग्रान्ट्स कमीशन की इस रिपोर्ट में यह देखने की कोशिश की कि इनको कितना पैसा दिया जाता है और दूसरे विश्वविद्यालयों को कितना पैसा दिया जाता है । मैं अपनी भाषा में कहूंगा तो उपयुक्त नहीं होगा । दिल्ली, अलीगढ़, शान्तिनिकेतन की और दूसरे भी जो केन्द्रीय विश्वविद्यालय हैं, चाहे वह किसी पहाड़ी क्षेत्र मे स्थापित किया हो, उनकी क्या स्थिति है और दूसरे विश्वविद्यालयों की क्या स्थिति है! दोनों के अनुदान की स्थिति देखें तो ऐसा लगता है कि केन्द्रीय विश्वविद्यालय तो केन्द्रीय सरकार के लाड़ले बेटे है और जो दूसरे विश्वविद्यालय है वे सौतेली मा के बेटे है। उनके अनुदान की राशि देखने से ही आप को मालूम होगा कि दोनों मे किस प्रकार का अंतर है। एक बार इंदौर में विश्वविद्यालयों के उपकुलपतियों की बैठक हो रही थी। उस समय एक केन्द्रीय विश्वविद्यालय के उपकुलपति महोदय ने कहा कि हम कैसे बच्चों की शिक्षा के स्तर में सुधार कर सकते हैं। आप हम को देते ही क्या है । आठ, दस करोड़ रुपया हम को मिलता है। इतनी राशि से हम शिक्षा का स्तर कैसे ऊंचा कर सकते हैं। तो इन्दौर विश्वविद्यालय के उपकुलपति महोदय, जो किसी समय यूनिवर्सिटी ग्रान्ट्स कमीशन के चेयरमैन भी रह चुके थे, उन्होने कहा कि अगर सरकारी रहस्यों का उद्घाटन करने की बात को क्षमा कर दिया जाय तो मैं कह सकता हूं कि यह जो उपकुलपति महोदय बोल रहे हैं उन को 9 या 10 करोड़ रुपया दिया जाता है। मैं जिस विश्वविद्यालय का उपकुलपति हूं उसके साथ 13 महाविद्यालय संबंधित है और उन के विश्वविद्यालय के साथ एक भी संबंधित नहीं है। लेकिन उन को 9 या 10 करोड़ की राशि दी जाती है और मेरे विश्वविद्यालय को सेंटर से केवल सवा करोड़ रुपया दिया जाता है जब कि मेरे विश्वविद्यालय के साथ 13 कालेज इतने बड़े-बड़े चल रहे हैं। तो वह नीति हम को छोड़नी पड़ेगी कि जो केन्द्रीय विश्वविद्यालय हैं, क्योंकि वह केन्द्रीय सरकार के सीधे नियंत्रण में है इस लिये उन को अनुदान की राशि ज्यादा दी जाय। डा० दत्त मुझे यह सत्य कहने के लिये क्षमा करें। लेकिन यह वास्तविकता है कि जो क्षेत्रीय या प्रान्तीय स्तर के विश्वविद्यालय हैं उन को शायद अनुदान की राशि उन्मुक्त हो कर नहीं दी जा रही है। मै नही चाहता कि आप उन के स्तर में किसी प्रकार की कमी करें, लेकिन मैं यह अवश्य चाहता हूं कि जो दूसरे विश्वविद्यालय है आस-पास के उन के अनुदान की राशि में और केन्द्रीय विश्वविद्यालयो के अनुदान की राशि में इतना ज्यादा अन्तर नही होना चाहिए। अब वैसे आप इस को सम्हालेंगे और किस प्रकार से उन में नये विभागों की स्थापना करेंगे यह निर्णय मैं आप के ऊपर छोड़ता हूं। इस संबंध में मैं अपनी ओर से कोई नयी बात नही कहना चाहता।

एक बात मैं संस्कृत विश्वविद्यालयों के संबंध में कहना चाहता हूं और विशेष रूप से इस लिये कि अगर मैं भूल नही करता तो शिक्षा मंत्रालय में शायद संस्कृत विभाग की देखरेख हमारे उपमंत्री यादव जी ही करते है। मैं यह जानता हूं कि वह अपने विभाग में कितनी रुचि लेते है और कितनी गहराई के साथ तथ्यों में जाते है और अपने कर्तव्यों को निभाने का प्रयास करते है। इन संस्कृत विश्वविद्यालयों के संबंध में मेरा कहना है कि जब से आप ने उन का ग्रेड बढ़ाया है और उन का स्तर ऊंचा किया है तब से उनके शिक्षा के स्तर में गिरावट आयी है । पहले यह विश्वविद्यालय नहीं थे, संस्कृत के बड़े बड़े कालेज या पाठशालायें थीं। उन में जो पांडित्य उभर कर आता था, जो उन में शोध होती थी, जब से वे विश्वविद्यालय बने है उस का अभाव होता जा रहा है। मेरे कहने का यह अभिप्राय नहीं कि उन को बंद कर दिया जाय या उन को आगे पैसा देने की आवश्यकता नहीं, पर मेरा कहना है कि हम को इसकी गहराई में जा कर देखना चाहिए कि जब से दरभंगा की या बनारस की यूनिवर्सिटियां बनी हैं उन में पाडित्य का, गहरे

[श्री प्रकाशवीर शास्त्री]

अध्ययन का या शोध का अभाव क्यों होता चला जा रहा है। एक दूसरा कारण मैं यह समझता हूं कि इन संस्कृत विश्वविद्यालयों के प्रति उपसभापति जी हमारी नयी पीढ़ी इसलिये अग्रसरित नही हो रही है कि जब संघ लोक सेवा आयोग के विज्ञापन निकलते हैं तो उन में जिस प्रकार की योग्यतायें मांगी जाती हैं उन को देखते हुए यह संस्कृत विश्वविद्यालयों के निकले हुए स्नातक अपने को अधूरा महसूस करते हैं और अपने में कमी महसूस करते हैं। मैं चाहता हूं कि कम से कम यह जो सात या आठ हिन्दी भाषी राज्य हैं जिनके लिये अभी गृह मंत्रालय ने कुछ नये निर्णय लिये हैं तो और कुछ हो या न हो, लेकिन कम से कम जो संस्कृत का ग्रेजुएट होगा उसकी हिन्दी तो कमजोर हो नही सकती, यह स्वाभाविक सी बात है, तो कम से कम इन प्रतियोगिताओं में उन उपाधियों को ले कर वह शामिल हो सकें इसके लिये कुछ अवसर उन को दिया जाना चाहिए। अगर ऐसा अवसर आप देते हैं तो मैं समझता हूं कि जो ज्ञान और ठोस ज्ञान उन के पास है और जिस में आज किन्ही कारणोंवश कुछ न्यूनता आती चली जा रही है, वह उभरेगा, ऐसा मेरा विश्वास है।

एक बात और जो 70 सदस्यों ने प्रधान मंत्री जी से कही थी और मैं आज इस विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के प्रतिवेदन की बहस का लाभ उठाते हुए कहना चाहता हूं, यह है कि हमारे देश मे कुछ महाविद्यालय इस प्रकार के हैं कि जिन की प्रारम्भ से ही एक राष्ट्रीय परंपरा रही है। मेरा अभिप्राय डी० ए० वी० कालेजेज से है। इन विश्वविद्यालयों में ही हमारे देश में भगतसिंह पैदा हुए, इन विद्यालयों में ही से हमारे लाला लाजपतराय पैदा हुए। इन डी०ए०वी० कालेजों ने अंग्रेजी सरकार के विद्यालयों की अपेक्षा देश के अन्दर एक नयी परंपरा को प्रारम्भ किया। लेकिन कई वर्षों से चर्चा चल रही है, चाहे वह राजस्थान में हो, पंजाब में हो या उत्तर प्रदेश में हो, कही भी हो, उसे देखते हुए आप को डी० ए० वी० विश्वविद्यालय की स्थापना अवश्य करनी चाहिए। इसलिए करनी चाहिए क्योंकि उसकी राष्ट्रीय परम्परा रही है। उसके पीछे अपना एक इतिहास रहा है और उसकी एक विशिष्ट श्रेणी रही है। मैं बताना चाहता हूं कि प्रधान मंत्री जी के सामने जब यह बात आई तो उन्होंने कहा कि हम इस पर गम्भीरता से विचार करेंगे। लेकिन युनिवर्सिटी ग्रान्ट्स कमीशन क्या इस दिशा में सोच रहा है, कैसा वह निर्णय लेगा यह तो वह जाने। यह मैं शिक्षा मंत्री जी से कहना चाहता हूं कि यहां देश भर में इतने डी० ए० वी० कालेज फैले हुए हैं, दक्षिण से उत्तर तक, कलकत्ता से लेकर मद्रास तक, इन सारे डी० ए० वी० कालेजों का, अगर आप कोई केन्द्रीय विश्वविद्यालय स्थापित न कर सकें जो इनको चैनेलाइज कर सके तो कम से कम रेजिडेंशल डी० ए० वी० विश्वविद्यालय बना दिये जाये और कुछ ऐसे विषय उनको दिये जाये जो कि दूसरे विश्वविद्यालयों से भिन्न हों और जिन विषयों के आधार पर वह विश्वविद्यालय अपने कुछ चमत्कार भी आपको दिखा सकें, अपनी विशेषता देश के सामने प्रदर्शित कर सकें। इस विषय पर भी हमको एक निर्णय अवश्य लेना चाहिए।

एक बात मैं और कहना चाहता हूं। कुछ विश्वविद्यालयों में, यहां मैं किसी का नाम नही लूंगा, लेकिन मैं आपके माध्यम से युनिवर्सिटी ग्रान्ट्स कमीशन से यह अवश्य कहना चाहता हूं कि विश्वविद्यालय की स्वायत्तता का अनुचित लाभ कैसे उठाया जा रहा है, उसको और कहीं देखें या न देखें लेकिन प्राध्यापकों के चयन में आपको अवश्य सावधानी बरतनी चाहिए। मैं ऐसे विश्वविद्यालयों और महाविद्यालयों से परिचित हू जिनमें ऊपर से लेकर नीचे तक लिस्ट आप देखें तो एक ही जाति के प्राध्यापक या लेक्चरर मिलेंगे। जिसमें लगता है कि 60 परसेंट केवल एक जाति के हैं और शेष 40 परसेंट दूसरे वर्ग

या जाति के है। मै जात-पांत का पक्षपाती नहीं हूं, लेकिन मै कहना चाहता हूं कि जिन विश्वविद्यालयों को एकता के नये वातावरण का निर्माण करना था, वे विश्वविद्यालय अपनी स्वायत्तता का लाभ उठाकर अगर इस प्रकार के गलत काम करेंगे और केवल एक ही जाति को प्रोत्साहन देंगे तो यह बात उचित नहीं होगी। मुझे तो बड़ी प्रसन्नता हुई जब मैने कल परसों पढ़ा कि जातीयता के विरुद्ध भी इस देश में एक नया नारा दिया गया है। जातीयता को इस देश से समाप्त करना है। लेकिन मै यह चाहता हूं कि देश से समाप्त हो या न हो, लेकिन हमारे शिक्षणालयों से जातीयता को अवश्य समाप्त होना चाहिए। इसका एक और कारण मै सोचता हूं कि बचपन मे अध्ययन के समय से ही नाम के साथ जातिवाचक शब्द पीछे जुड़ जाता है। उस समय वह बेचारा बालक नहीं जानता। लेकिन धीरे-धीरे उस जातिवाचक शब्द के साथ उसको मोह हो जाता है। परिणाम यह होता है कि बड़ा होने के साथ वह आदमी के साथ लगा रहता है। आप इस को शिक्षणालयों से समाप्त कीजिए और समाप्त करने के लिए आप विश्वविद्यालयों से प्रारम्भ करें। उत्तर प्रदेश में आर्य समाज के स्कूलों में हमने इसको प्रारम्भ किया है। हमारे जो हाई स्कूल या मिडिल स्कूल हैं उनमे कोई पढ़ने वाला बच्चा या कोई पढ़ाने वाला अध्यापक या अध्यापिका अपने नाम के साथ जातिवाचक शब्द नही लगा सकेगी। लगाना है तो दूसरे स्कूलों में जाये। बचपन से जो यह नाम के साथ जाति का मोह जुड़ा रहता है वह ही आगे चलकर जातीयता को प्रोत्साहन देता है। हालांकि जातीयता को समाप्त करने मे केवल इतना ही काम सहायक नही हो सकेगा। इतने गहरे विषय को जो हमारे देश की धरती मे इतना नीचे तक चला गया है, समाप्त करने में पीढ़ियां लग जायेंगी। लेकिन शिक्षणालयों से यह विष यदि समाप्त हो जाएगा तो कम से कम इस दिशा में हम बहुत आगे चले जायेंगे।

अन्त में दो तीन बातें मै और कहना चाहता हूं जिनमें एक वेतनमानों के सम्बन्ध में है। अभी युनिवर्सिटी ग्रान्ट्स कमीशन ने नये वेतनमान निर्धारित किये है। मुझे प्रसन्नता है कि अध्यापकों की स्थिति सुधरी है और जो ग्रेड पी० सी० एस० या आई० ए० एस० को मिलते थे, आज वह स्थिति आई है कि महाविद्यालयों या विश्वविद्यालयों के अध्यापकों को भी उसी प्रकार का वेतनमान मिलता है। लेकिन मै यह चाहता हूं कि वेतन के साथ साथ उनकी जिम्मेदारियां भी बढ़ाई जायें। केवल वेतन बढ़ाना पर्याप्त नही होगा। आपने वेतनमान बढ़ा दिये, लेकिन वेतन बढ़ाने के बाद भी उतना ही काम, वही लापरवाही, वही वातावरण वहा पर है तो उसका क्या लाभ हुआ। वेतन बढ़ाने के साथ आप यह कर दीजिए कि जिन अध्यापकों या जिन प्राध्यापकों या विभागाध्यक्षों का परिणाम 60 प्रतिशत से कम रहेगा उनको बढ़ा हुआ वेतनमान नहीं मिल सकेगा। अगर वेतनमान बढाते हैं तो कुछ जिम्मेदारी भी साथ साथ उनकी बढ़ाइये ताकि विश्वविद्यालयों के वातावरण में कुछ गम्भीरता आये। इस दिशा में आप पहल कीजिए, केवल वेतनमान बढ़ाने से काम नही चलेगा।

पीछे अफ्रीका के कुछ देशों को देखने का मुझे मौका मिला। मैने जाम्बिया में एक विश्वविद्यालय, कीनिया में इसी तरह का एक विश्वविद्यालय और तंजानिया मे एक विश्व-विद्यालय देखा। मैने एक बार वहां के लोगों और मिनिस्टरों से बातचीत की कि क्या बात है आपके यहां शिक्षा केवल एक प्रतिशत, डेढ़ प्रतिशत ही है। जहां उन्होने यह कारण बताया कि अभी हमारे नये स्वतंत्र हुए देश हैं, अविकसित देश हैं, भारत के स्तर पर आने में हमको थोड़ा समय लगेगा, वहां एक बात उन्होने और भी बताई जिससे मै कुछ प्रभावित हुआ और मै चाहता हूं कि यहां जो विश्वविद्यालय के अधिकारी हैं या शिक्षा मंत्रालय उस दिशा में सोचे कि अब वह समय आ गया है जब हम इस बात पर गम्भीरता से विचार करें कि विश्वविद्यालय स्तर की शिक्षा सबके लिए ही

[श्री प्रकाशवीर शास्त्री]

क्या आवश्यक होनी चाहिए ? या केवल जो बच्चे प्रतिभाशाली हैं उनके लिए विश्वविद्यालय की शिक्षा आवश्यक होनी चाहिए । हाई स्कूल से लेकर बच्चे एम० ए० तक थर्ड डिवीजन में पास होते चले जा रहे है । हिन्दी-अंग्रेजी में चिट्ठी लिख नही सकते और थर्ड डिवीजन में एम० ए० पास करने के बाद रोजगार दफ्तरों में जा कर लोगों को परेशान करते हैं और दूसरे लोगों को परेशान करते है। मैं जानना चाहता हूं कि विश्व-विद्यालय की शिक्षा क्या सब के लिये आवश्यक है ? आज देश के शिक्षा शास्त्रियों के सामने एक खुला हुआ प्रश्न है और विश्वविद्यालय अनुदान आयोग को इस प्रश्न पर गम्भीरता से कोई निर्णय लेना चाहिये कि विश्वविद्यालय स्तर तक शिक्षा जो है वह सब के लिये आवश्यक है अथवा कुछ प्रतिभाशाली विद्यार्थियों के लिये। जो आगे न पढ़ सकें वे हाई स्कूल की परीक्षा पास करने के बाद किसी टैक्नीकल लाइन मे जाएं या देश के दूसरे कारोबार में जाएं। मैंने देखा है कि थर्ड डिवीजनर्स नीचे से ऊपर तक आ रहे हैं और देश का पैसा बरबाद कर रहे हैं। यह चीज भारत जैसे देश के लिये चिन्ता का विषय है।

अंतिम बात जिसे कह कर बैठ जाना चाहता हूं वह है जो डा० विद्या प्रकाश दत्त जी ने पी० एच० डी० और डी० लिट्० के बारे में कही । इससे मैं अपनी सहमति व्यक्त करता हूं और उनके स्वर में स्वर मिला कर जो कहना चाहता हूं वह है आनरेरी डिग्री के बारे में । मैं ऐसे व्यक्तियों को जानता हूं जिनकी निजी योग्यता, शैक्षणिक योग्यता आठवीं की भी नही है । दूसरी तरफ प्रांतो के मुख्यमंत्री भी है जिनको कि इस प्रकार की डिग्रियां दी जाती हैं । क्योंकि वह मुख्यमंत्री है और डिग्रियों के चयन में उनका हाथ है लिहाजा उनको डिग्रियां दी जा रही है। डिग्रियां ही नही दी जा रही हैं बल्कि वे अपने निचले कर्मचारियो को भी कहते है कि हमारे नाम के साथ डाक्टर जरूर लगाया जाए । यह डाक्टरेट की डिग्री का इतना खुला उपहास है कि यह शिक्षा के ऊपर बहुत बड़ा धब्बा है। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग अपनी गम्भीरता और अपनी प्रतिष्ठा को बढ़ाने के लिए जहां कुछ स्वस्थ निर्णय ले वहां इस प्रकार की होड़ पर भी कुछ सख्ती के साथ नियंत्रण करे।

SHRI MULKA GOVINDA REDDY (Karnataka): Mr. Vice-Chairman, Sir, I thank Prof. Yadav, the Deputy Minister for Education, for having provided us an opportunity to discuss the Report of the University Grants Commission for the year 1973-74. As Prof. Dutt said, it would have been better if the latest Report of the University Grants Commission was placed before us and our views sought. I hope that during the next year, the Report for the year 1975-76 will be placed before this august House.

Mr. Vice-Chairman, Sir, there are now 95 universities with nine institutions deemed to be universities with 4,308 colleges and 35,83,986 students. It has been felt that the standards in the universities are going down, mainly because proper teaching staff has not been recruited. It is true that many talented persons won't come to the university because of the low salaries that are being provided to teachers in the colleges affiliated to the universities. The UGC has prescribed some scales of pay for lecturers, readers and professors. Some of the State Governments have accepted them but some have not accepted them. I can quite realise the difficulties of the State Governments who have not accepted the UGC scales of pay because of paucity of funds. Therefore, it is incumbent on the UGC to insist that all colleges in the universities and all affiliated colleges in the States should accept these scales, and UGC should come forward to bear the extra burden of expenditure. The present formula that is being followed by the UGC is that for a period of five years they bear the additional expenditure to the tune of 80 per cent and, after five years, it is the duty of the State Governments concerned to bear the entire cost. The UGC should come forward with the proposal that they would bear at least 80 percent of this additional cost perma-

nently. Then only all the universities and colleges affiliated to the universities in the States will be in a position to implement the UGC scales. Unless you do that, it is impossible to attract the talented persons and to improve the standards. I hope UGC will come forward with this suggestion that they are prepared to meet the entire, or at least 80 per cent of the cost that is involved in implementing the new UGC scales. There are some difficulties for UGC to accept this proposal. I quite see the point. As the Deputy Education Minister has said, the paucity of funds is there. The Central Government is not keeping adequate funds at the disposal of UGC. We all should press that the Central Government should come forward with liberal grants to UGC.

Sir, if you go through the number of students that are now enrolled in the universities and the number of teachers that are teaching these students, you will find that the staff-students ratio is very high. In 1953-54, it was 1:17·6. Now, in 1973-74, it is 1:19.9. Therefore, the colleges do need more teachers to be appointed, which means more expenditure which should be borne by the States as well as by UGC.

Mr. Vice-Chairman, Sir, it has been said in the Report that steps are being taken to construct more hostels, to provide more hostel accommodation for the students. It is evident from the Report that not more than 10 per cent of the students that are enrolled in the colleges are being provided with hostel accommodation. Unless hostel accommodation is provided to a large number of students and to a greater percentage of students, it will be impossible to enforce discipline. Though under the 20-point economic programme enunciated by the Prime Minister, some steps are being taken to provide rations at subsidised rates, and also to provide text-books, note-books at concessional rates and other facilities, the percentage of students living in the hostels is not more than 10 per cent. So if real help is to be given to the students, more hostel accommodation has to be created. Then only it will be helpful to the students to prosecute their studies properly and purposefully.

Ragging in the student hostels has not yet stopped and something should be done to eradicate it once and for all. During the emergency, in some of the hostels it might have been stopped, but this should be stopped not only for the present but for ever.

Mr. Vice-Chairman, Sir, the problem of inter-State seniority of the teachers of colleges in the integrated States has not yet been solved. Even after 20 years when the States were re-organised, particularly in Karnataka, this problem regarding inter-State seniority of Lecturers in the colleges has not been solved and many Lecturers who should have become Readers or Professors have not attained those positions because of the failure of the Government to solve this question of inter-State seniority. I should also like to bring to the notice of UGC through the Education Minister that adequate steps should be taken to provide avenues for promotion for Lecturers who have put in more than 15 or 20 years of service. In most of the university colleges and affiliated colleges in Karnataka, lecturers who have put in more than 20 or 25 or 30 years of service have to retire only as lecturers and they do not have any hope of becoming readers or professors. Something should be done to see that lecturers who have put in more than fifteen years of service are made associat professors or professors.

There is another problem which is of very serious importance. In many of the States, private colleges are flourishing. The lecturers working in these private colleges are not getting proper emoluments. They have to sign on the dotted lines and have to give receipts for amounts which are not paid to them at all. If the salary of a lecturer is fixed at Rs. 500, what he actually gets is Rs. 300 only and this malpractice should be done away with. Education is a very important subject; we impart education to students who are expected to become good citizens. If we leave the students in the hands of these educational institutions run by these private colleges—some of them might be good but most of them have become commercial institutions interested only in making money and they are not interested in the education of their students—the students' future may be at stake. In yesterday's Hindu there is a headline in the central page—'Malpractices

[Shri Mulka Govinda Reddy]

in Exams continue unabated'. In this article, the correspondent has quoted the malpractices that are being resorted to by the private colleges in Bihar.

Mr. Vice-Chairman, with your permission, I quote—

> "There are also repeated complaints that the managements of these colleges do not pay their teaching staff regularly and collect exorbitant amount of fees from their students but enter a much smaller amount in their account books and also issue receipts for smaller amounts."

What I have read from this article is applicable not only to Bihar but to most of the other States also where this is the practice. Most of these colleges are not paying their teaching staff properly and they are extracting money from the students. The students have to pay not only higher fees but also a capitation fee, even to enter an undergraduate or intermediate or post-graduate college. Particularly in the professional colleges, in the medical and engineering Colleges, run by these private educational societies, they extract exorbitant amounts. It ranges from Rs. 10,000 to Rs. 100,000 for a seat in the medical college and to Rs. 20,000 for a seat in the engineering college.

THE VICE-CHAIRMAN (SHRI V. B. RAJU): How much more time would you take?

SHRI MULKA GOVINDA REDDY: I would need at least 10 more minutes.

THE VICE-CHAIRMAN (SHRI V. B. RAJU): Kindly finish in five minutes.

SHRI MULKA GOVINDA REDDY: If you are pressed for time and if you have got some engagement, I would like to continue tomorrow. Otherwise, I would need at least 10 more minutes.

THE VICE-CHAIRMAN (SHRI V. B. RAJU) : Then, the debate will continue tomorrow.

The House stands adjourned till 11·00 A.M. tomorrow.

> The House then adjourned at five of the clock till eleven of the clock on Thursday, the 12th August, 1976.

M562RSS/76—GIPF.